International Journal of Applied Research 2018; 4(4): 355-356

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 8.4
IJAR 2018; 4(4): 355-356
www.allresearchjournal.com
Received: 26-02-2018
Accepted: 30-03-2018

डॉ. संध्या गौतम
एसोसिएट प्रोफेसर आर्य गर्ल्ज कॉलेज, अम्बाला छावनी, हरियाणा, भारत

Corresponding Author:
डॉ. संध्या गौतम
एसोसिएट प्रोफेसर आर्य गर्ल्ज कॉलेज, अम्बाला छावनी, हरियाणा, भारत

भक्तिकालीन साहित्य में मानववाद

डॉ. संध्या गौतम

प्रस्तावना

मानव सृष्टि की सर्वोत्तम रचना है। उसके सर्वांगीण विकास को आधार बनाकर चलने वाली विचारधारा का नाम ही मानववाद है। हिन्दी साहित्यकोश में मानवीयता को ही नैतिकता, कला, सौन्दर्यबोध तथा आचार–विचार का प्रतिमान मानते हुए मानववाद को परिभाषित करने का प्रयास किया गया है – ''मानववाद एक ओर मानवोपरि दिव्य सत्ता का निषेध करता है तो दूसरी ओर अमानवीय यान्त्रिकता का। यह मनुष्य में जो दिव्य और पाशविकता के बीच जो पूर्णतः मानवीय है, उसी को मान्यता देता है।''[1] मानववाद मन का वह रूझान है, जो मनुष्य को और उसकी क्षमताओं, आकांक्षाओं एवं उसके कल्याण को प्राथमिकता देता है।''[2] आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने मनुष्य शब्द को परिभाषित करते हुए कहा है कि मनुष्य पशु धरातल से ऊपर उठा होने के कारण ही मनुष्य है। उसमें त्याग, संयम, दया, ममता, करूणा आदि के साथ–साथ विवेक–बुद्धि तथा संकल्प–शक्ति है। जिसके कारण वह सृष्टि का महत्त्वपूर्ण प्राणी बन गया है।[3] इसी प्रकार गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ने कहा – यूवनिवर्स इज ग्रेट, बट मेन इज ग्रेटर।[4] इससे स्पष्ट है कि मनुष्य इस सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी होने के नाते समस्त कार्यों का कर्ता एवं भोक्ता स्वयं है।

मनुष्य द्वारा इस समाज से ग्रहण किए गए रीति–रिवाज, धर्म, ज्ञान, विश्वास, दर्शन आदि का समुच्चय ही संस्कृति है।[5] संस्कृति का संबंध मानव की अंतर्मुखी दशा से है। जिस कर्म व भाव से मनुष्य के संस्कार सुन्दर बने, जिससे कृति का सौन्दर्य तथा दिव्यता अधिक स्पष्टता से प्रकट हो सके। जो भी कार्य उसे स्वार्थहीन करे, उदार बनाए और साथ ही सृजन में, विकास में सहायक हो, वही मानव संस्कृति का आधार है।6 ''नाहि मानुषात् श्रेष्ठतम् ही किचित'' महर्षि व्यास के इस कथन से ही मानववादी चेतना तथा संस्कृति का आरम्भ हो जाता है। मानववादी चेतना किसी अपर सत्ता में विश्वास नहीं करती, परन्तु यदि वह मानवीय विकास में सहायक है, तो उसका विरोध भी नहीं करती। मानववाद उसी धर्म को सच्चा धर्म मानता है, जो मनुष्य को गौरव प्रदान करता है। अच्छे संबंधों का आधार स्वतंत्रता, समानता और भातृत्व में अन्तर्निहित है।[7] यही मनुष्य को एकता के सूत्र में बाँधते हैं। मानववादी विचारधारा का कार्य मतों या दार्शनिक सिद्धांतों का प्रतिपादन करना नहीं है, अपितु मनुष्य को संस्कृति एवं श्रेष्ठ बुद्धि के सिद्धांतों की ओर प्रेरित करना है। यह धर्मोन्माद का विरोधी है। इसका विश्वास है कि यदि दुनिया संकीर्णता, हठधर्मिता और दुराग्रह के बिना नहीं चल सकती तो उदारता, सहिष्णुता और समझदारी के अभाव में भी स्थिर नहीं रह सकती। मानववाद का लक्ष्य इसी लोक में मनुष्य के कल्याण को केन्द्र मानकर जीवन को अर्थ देना है।8

हिन्दी साहित्य के इतिहास में संवत् 1375 से 1700 ई. के मध्य लिखे भक्ति साहित्य में मानववादी चेतना तथा संस्कृति की जो गूँज सुनाई देती है, विश्वभर में उसका कोई सानी नहीं है। नामदेव, कबीर, नानक, रैदास, जायसी, सूरदास, तुलसीदास, बीराबाई आदि कवियों ने जिन मानववादी मूल्यों को अपने साहित्य (वाणी) का आधार बनाया, वे शाश्वत है। स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व जैसे मूल्यों को आधार बनाकर जीवन यापन करने वाले इन कवियों की प्रगतिशील विचारधारा ही मानववादी संस्कृति की पोषक और उन्नायक बनी है। ये कवि अपने समाज में पनपते अन्याय, अत्याचार, ईर्ष्या–द्वेष, साम्प्रदायिकता, अनास्था, अनैतिकता, संबंधों में विघटन, शोषण आदि विकृतियों को देखकर विचलित नहीं होते, अपितु स्वस्थ लोकतन्त्रात्मक समाज की संरचना के लिए संकल्पबद्ध हो साहित्य का सृजन करते हैं। इसी सृजन का परिणाम है उनका सार्वकालिक, सार्वदेशिक और सार्वभौमिक साहित्य, जो मानवीय सभ्यता और संस्कृति का निचोड़ है। जो मन, बुद्धि और आत्मा को एक साथ स्पर्श करता है।

भक्तिकालीन साहित्य पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, आध्यात्मिक और लौकिक होते हुए भी मानववादी विचारधारा तथा संस्कृति के सभी तत्वों को अपने भीतर समेटे हुए है।

संतों, सूफियों और भक्तों के काव्य को जितना मैंने पढ़ा और जाना तो पाया इनके मानववादी दृष्टिकोण ने समग्र समाज को एक करने का प्रयास किया है। जो इनकी समन्वयवादी दृष्टि को परिचायक है।'' सुकरात ने एक बार कहा था कि जब परमेश्वर को धरती के जीवों से वार्तालाप करना होता है, तो वह कवियों की वाणी के माध्यम से बोलता है।''[9] सुकरात का यह कथन विश्व के कुछ ही कवियों पर लागू होता है। इन कुछ कवियों में भक्तिकाल के कवियों का स्थान सबसे ऊँचा है। इन कवियों ने जाति, वर्ग और वर्ण संबंधी भेद को समाप्त कर मानव को मानव रूप में ही देखने का प्रयास किया। इनकी साधना का द्वार सबके लिए उन्मुक्त था। इन्होंने भक्ति के क्षेत्र में सब को समानता का दर्जा दिया जिससे ऊँच–नीच, हिन्दू–मुसलमान का भेद विलुप्त हो गया। कबीर ने तो कहा है – जात–पात पूछे नहि कोय, हरि को भजे सो हरि का होय। वास्तव में संतों और भक्तों का धर्म विश्व धर्म है। इस विश्व धर्म का मूल आधार है – हृदय की पवित्रता, क्योंकि समस्त वासनाओं, इच्छाओं और द्वेषों से रहित हृदय ही विश्व धर्म में प्रवेश कर सकता है।[10]

इन कवियों ने मानव जीवन में मनोविकारों काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद (अहंकार) आदि को समस्त प्रपंचों की जड़ माना है। कबीर कहते हैं – ''त्रिष्णा सींची न बुझै,/दिन–दिन बढ़ती जाय।'' उनका अनुभव था कि सामान्य जीव से लेकर चैतन्य पुँज मनुष्य तक इसी त्रिष्णों के हाथों ध्वस्त होते रहे हैं। इन्होंने कर्म करो और बाँट कर खाने की प्रेरणा दी। नानक का मानना था कि सेवाभाव और कर्मण्यता से ही समाज के निकम्मेपन और आलस्य को दूर किया जा सकता है। जन–जन में परिवर्तन से ही बाह्य परिवर्तन संभव है। विश्व शांति और एकता को आध्यात्मिकता मार्ग पर चल कर ही प्राप्त किया जा सकता है। इन कवियों ने मानव जीवन में शुद्ध आचरण पर बल दिया। मानव जीवन में आचरण के लिए प्राथमिक शर्त है – स्वतंत्र विवेकपूर्ण मानवीय संकल्प। पानी का बहना, पहिए का घूमना, घड़ी का चलना उसका आचरण नहीं है, किन्तु मनुष्य का कड़वी बात बोलना, आक्रमण करना, सहायता देना आदि उसका आचरण है। पहिए का घूमना आदि उसके विवेकपूर्ण निर्णय और स्वतंत्र संकल्प का परिणाम नहीं है। मनुष्य का व्यवहार उसके विवेकपूर्ण संकल्प का परिणाम होता है। अतः वह आचरण है, जिसके लिए वह उत्तरदायी है। कबीर जायसी, सुर, तुलसी आदि कवियों ने अपने विवेकपूर्ण आचरण द्वारा, अपनी समन्वयवादी दृष्टि द्वारा समस्त मानव जाति को एक करने का प्रयास किया, जिसमें वे सफल भी हुए। इसी प्रकार मीरा ने नारी स्वतंत्रता के लिए निरंतर संघर्ष को झेला, लेकिन समाज की रूढ़िवादिता को स्वीकार नहीं किया। इन कवियों ने स्वतंत्र रह कर काव्य रचना की किसी राजा की दासता को स्वीकार नहीं किया। इन्होंने स्वतंत्र रहते हुए समाज के प्रति अपने उतरदायित्व का पूर्णतः निर्वाह किया।

भक्तिकालीन साहित्य जीवन के धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक पक्षों को गहराई तक छूते हुए मनुष्य की विभिन्न समस्याओं को उद्घाटित कर उनका वैज्ञानिक ढंग से निराकरण भी प्रस्तुत करता है। उसमें लौकिक जीवन के साथ–साथ आध्यात्मिकता का समन्वय भी मिलता है। इस आध्यात्मिकता में मानववादी चेतना के ये तत्व ज्ञान, प्रेम, कर्म, आचरण, विवेक, स्वतंत्रता, दायित्वबोध, आस्था–जिजीविषा आदि निहित है। इन कवियों ने अपने समय की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक परिस्थितियों को पहचाना। जिनमें अन्याय, अत्याचार, शोषण, अनैतिकता, अंधविश्वास, हठधर्मिता, रूढ़िवादिता आदि जो मानवीय गरिमा को नष्ट कर रही थी, उसके विरूद्ध अपनी आवाज उठाई। अपने आचरण, संघर्ष और सृजन से समाज को चेताया। लोकनायक तुलसीदास के महाकाव्य, 'रामचरितमानस' को भारतीय धर्म और संस्कृति का मूल आधार माना जाता है। जिसमें वेद–पुराण और शास्त्रों का सार है। तुलसी की समन्वय करने की शक्ति की प्रशंसा करते हुए डॉ. रामकुमार वर्मा ने लिखा है कि तुलसी ने राम के चरित्र का आधार लेकर मानव जीवन की जितनी व्यापक और सम्पूर्ण समीक्षा की है, उतनी हिन्दी साहित्य के किसी कवि ने नहीं की। इस समीक्षा के साथ उन्होंने लोकशिक्षा का भी ध्यान रखा और मानव जीवन के ऐसे आदर्शों की स्थापना की जो विश्वसनीय है और समय के प्रवाह के साथ बह नहीं सकते।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने श्रेष्ठता के आधार पर भक्तिकालीन साहित्य को अपने ही ढंग का रससिक्त साहित्य माना है, जिसमें प्रेम, उल्लास ओर महान् साधना का सुन्दर समन्वय है। इस साहित्य ने भारतीय जन–जीवन में आस्था और जिजीविषा का संचार किया था और आज भी कर रहा है और भविष्य में भी करता रहेगा। भक्तिकालीन कवि मानव जीवन की सार्थकता और उसकी असीम संभावनाओं के विकास के लिए समन्वय पर बल देते हैं, क्योंकि सत्य, ज्ञान, प्रेम और कर्म, व्यक्ति और समाज, सभ्यता और संस्कृति, प्राचीनता और नवीनता, साधना और तपस्या, कथनी और करनी आदि के समन्वय द्वारा ही मानव जीवन को उत्कृष्ट बनाया जा सकता है। ये कवि परम्परा से कटकर नहीं, अपितु परम्परा से रस खींच कर आधुनिकता को चित्रित करते हैं। इस संदर्भ में पंडित नेहरू की यह बात उल्लेखनीय है कि जिस वृक्ष की जड़े जमीन में नहीं होती वह उखड़ जाता है, साथ ही जिस वृक्ष को खुली हवा नहीं मिलती वह पेड़ बौना रह जाता है। ये कवि परम्परा को आँख मूँद कर स्वीकार नहीं करते, अपितु अपने विवेक द्वारा युग की माँग के अनुकूल उसकी जीवन्तता पर बल देते हैं। इसीलिए इन्होंने मानव के अन्तस् के शिवत्व को जगाने वाले प्रेम, ज्ञान, कर्म और इच्छा के समन्वय पर बल दिया है। अतः भक्तिकालीन साहित्य सत्यं–शिवं–सुन्दरं की त्रिवेणी में स्नान करता हुआ मानववादी चेतना और संस्कृति से ओत–प्रोत है।

संदर्भ

1. धीरेन्द्र वर्मा (सं.) हिन्दी साहित्यकोश भाग–1, पृ. 314
2. म्दबलबसवचमकपं ठतपजंबदपबंए टवसनउम प्प्ए च्ंम 825
3. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. 51
4. हेमेन्द्र पानेरी, मानव और मूल्य, परिशोध, मानव–मूल्य विशेषांक, पृ. 29
5. जगमोहन चोपड़ा, आधुनिक हिन्दी उपन्यास, पृ. 198
6. नरेन्द्र मोहन, भारतीय संस्कृति, पृ. 5, 7
7. डी.आर.जाटव, सामाजिक एवं मानववादी विचारक, पृ. 213
8. नवल किशोर, मानववाद और साहित्य, पृ. 38
9. डॉ. गणपति चंद्र गुप्त, साहित्यिक निबंध, पृ. 643
10. डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 139